Golden Research Thoughts
ISSN 2231-5063
Impact Factor : 2.2052 (UIF)
Volume-4 | Issue-6 | Dec-2014 Available online at www.aygrt.isrj.org

हिन्दी, भारतीय भाषाएँ एवम् शिक्षा

वीरेन्द्र भारद्वाज

एसोसिएट प्रोफेसर, शिवाजी कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय.

सारांश –

संस्कृति और सभ्यता की सम्वाहिका भाषा ही होती है। भाषा सभी प्रकार के ज्ञान के सम्प्रेषण का आधार है। जिस प्रकार संस्कृति तथा राष्ट्रीयता के प्रश्न किसी जाति अथवा देश की अस्मिता से जुड़े होते हैं, उसी प्रकार भाषा का प्रश्न भी हमारी अस्मिता और हमारे अस्तित्व से जुड़ा है। भाषा संस्कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। सृष्टि के आरंभ में जब मानव के पास भाषा नहीं थी, तब निश्चय ही उसकी अभिव्यक्ति भी सीमित रही होगी।

प्रस्तावना-

भाषा ने सभ्यता के विकास में अपना योगदान दिया। भाषा के विकास के साथ-साथ साहित्य और ज्ञान-विज्ञान का विकास हुआ। धीरे-धीरे मनुष्य ने भाषा को ही अपने अध्ययन का विषय बनाना प्रारंभ कर दिया। नए आदर्श, सिद्धांत बने, सभ्यता और संस्कृति को गति मिलो। समय की बढ़ती हुई आवश्यकताओं, सामाजिक, व्यावसायिक आदि दबावों ने मनुष्य का ध्यान भाषा की ओर आकृष्ट कर अर्थ का भरपूर विस्तार किया है। सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक सभी स्तरों पर किए जाने वाले विभिन्न प्रयास मानव-जाति की एकता और विकास की दिशा में है। अब बहुत से सत्य, बहुत से यथार्थ आपस में टकरा रहे हैं। सम्पूर्ण विश्व को एक साथ लाने की कोशिश की जा रही है। भूमंडलीकरण की इस प्रक्रिया में अपनी निजी पहचान बनाए रखते हुए सबके साथ चलना एक चुनौती है। इस चुनौती से निपटने में भाषा एक कड़ी के रूप में व्यक्ति से विश्व तक को जोड़ने का काम करती है। वैश्वीकरण के दौर में धर्म, इतिहास, राजनीति और भाषा का अर्थ भी अधिक व्यापक हुआ है।

आजादी से पहले देश के समक्ष भाषा का प्रश्न, प्रश्न नहीं था, अपितु एक समाधान के रूप में था और यह समाधान देश की समस्त भाषाआं में समन्वय स्थापित करने हेतु हिन्दी के रूप में ढूँढ लिया गया था। भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्र हुआ था। 14 सितम्बर 1949 को हिन्दी को भारतीय संविधान में राजभाषा के रूप में स्थान दिया गया। इस समय हिन्दी उपनिवेशवाद से टकरा कर, आधुनिकता से रिश्ता रखते हुए विशाल हिन्दी जाति की भाषा बनी। ब्रिटिश सरकार ने अपने शासन काल में सामान्यत: संघर्ष की अवधि में भारतीय जनजीवन को बहुत प्रभावित किया। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक प्राय: सभी क्षेत्रों में यह प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ। प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीय समाज में वैज्ञानिक साधनों का उदय हुआ, सामाजिक सुधार आरंभ हुए, आर्थिक स्थिति के सुधार हेतु स्वदेशी आंदोलन का सूत्रपात हुआ और नवजागरण आरंभ हुआ। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप देश में एकसूत्रता का विकास हुआ। इस एकसूत्रता की प्रतिष्ठा हेतु एक सक्षम भाषा को आवश्यकता थी जो उस राष्ट्रीय कार्य में अपना योगदान दे सके। वह कार्य हिन्दी भाषा ने बखूबी निभाया। भौगोलिक से लेकर सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा भाषिक आदि अनेकानेक विविधताओं से मुक्ति भारत जैसे विशाल राष्ट्र में एक सर्वस्वीकृत एवं सर्वप्रचलित संपर्क भाषा के रूप में भी हिन्दी का चयन किया गया।

स्वतन्त्रता संग्राम में देश के नेताओं के समक्ष भारत की राष्ट्रभाषा का प्रश्न उठा और इसका समाधान हिन्दी के रूप में निकाला गया। इस हल के पीछे ठोस कारण थे। यदि भारत के अतीत में झाँके तो एक समय ऐसा भी था जब संस्कृत लगभग पूरे देश भर में प्रचलित थी। यह भारत के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक मूल्यों के एकीकरण का दौर था। भारत राजनीतिक रूप में न सही, सांस्कृतिक रूप से एक राष्ट्र रहा है, तब इस सांस्कृतिक एक्य का आधार संस्कृत भाषा ही रही है। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के चरणों को पार करने के उपरांत भारत की अन्य भाषाएँ अपने-अपने स्वरूप का निर्माण करती रही है। निस्संदेह हिन्दी भी उनमें से एक है। पूरे देश में आपसी व्यवहार के लिए पहले से ही होते आ रहे प्रयोग और बढ़ती लोकप्रियता ही हिन्दी के पक्ष में निर्णय का आधार बना। आजादी के उपरांत जिन चिन्तकों नेताओं ने हिंदी की राष्ट्रभाषा के रूप में कल्पना की, उनमें केशवचंद्र सेन का योगदान उल्लेखनीय है। डॉ. प्रभाकर, श्रौत्रिय ने देश की राष्ट्रभाषा के संदर्भ में लिखा है - ''भाषा में सिर्फ भाषा का प्रश्न ही शामिल नहीं है, जीवन की सारी समस्याएँ मिली हुई हैं। अर्थात् राष्ट्रभाषा का प्रश्न, राष्ट्र जीवन का प्रश्न है, उसके स्वाभिमान का जीवन शैली का, अभिव्यक्ति की तेजस्विता का और सबसे बढ़कर उसकी मुक्ति का।''[1] फलत: राष्ट्रीय उन्नायकों ने भी यह अनुभव किया कि हिंदी के प्रचार-प्रसार से हमारी प्राचीनतम संस्कृति भी सुरक्षित है और इसमें प्रत्येक प्रकार के भाव को व्यक्त करने की क्षमता है। हिन्दी को प्रमुख भाषा बनाने में उस समय हिंदीतर क्षेत्रों के अनेक लोगों ने अपनी भूमिका निभाई। सर्वश्री राजा राममोहनराय, केशवचंद्र सेन, दयानन्द सरस्वती, महादेव गोविन्द रानाडे, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, सुभाष चन्द्र बोस जैसे राष्ट्रीय महानायक, अहिन्दी भाषी क्षेत्रों से ही सम्बंध रखने वाले थे। जिन्होंने हिन्दी का प्रबल समर्थन किया। राष्ट्रपिता महात्मा

[1] 'हिन्दी: कल आज और कल' - डॉ. प्रभाकर श्रौत्रिय, पृ.सं. 175-176.

गांधी ने तो यहाँ तक कह दिया था कि 'मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न स्वराज का प्रश्न है।' इसके पूर्व भी गांधी जी अनेक अवसरों पर हिन्दी के प्रति यह विचार व्यक्त कर चुके थे। राष्ट्रीय आंदोलन में गांधी जी भाषा संबंधी विषयों को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते थे। सन् 1918 में इंदौर के आठवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन में महात्मा गांधी ने कहा था कि हिन्दी ही हिन्दुस्तान को राष्ट्रभाषा हो सकती है और होनी चाहिए। वे राष्ट्र और हिन्दी के विरूद्ध षड्यंत्र की भावना से अनभिज्ञ न थे। अतः उन्होंने स्पष्ट किया कि हिन्दी का विरोध अंग्रेजी से है, प्रादेशिक भाषाओं से नहीं। हिन्दी प्रादेशिक भाषाओं के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करेगी। पादेशिक भाषाओं को विकास का पूर्ण अवसर मिलेगा।

भाषा विचार-विनिमय का प्रमुख साधन होने के साथ-साथ समाज, सभ्यता और संस्कृति की वाहक भी होती है। वह अपनी पूरी अस्मिता, परिवेश, भूगोल, इतिहास, चेतना और संवेदना सहित यात्रा करती है। हिन्दी या किसी भारतीय भाषा के स्थान पर अंग्रेजी को अपना लेना या शिक्षा का माध्यम बना लेना, पूरी की पूरी पीढ़ियों को अपने समूचे परिवेश, इतिहास, भूगोल, चेतना, संवेदना से काट देना है। सत्ता और भाषा का संबंध हमेशा से रहा है - वह भाषा भले ही संस्कृत हो, लैटिन हो, फारसी या अंग्रेजी हो हर साम्राज्य, आर्थिक सांस्कृतिक एक भाषा लेकर चलता है। आज भूमंडलीकरण की व्यवस्था में भी भाषा को सत्ता और वर्चस्व के औजार के रूप में लेता है। समाज में ऐसे लोग ज्यादा हैं जो भाषा को सांस्कृतिक पहचान, सामाजिकता और मानवीय अस्तित्व को दृष्टि से जरूरी मानते हैं। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का विरोध कर अंग्रेजी का समर्थन करने वाले कुछ लोग ऐसा वातावरण बनाते हैं कि जैसे हिन्दी साम्राज्यवादी भाषा हो और उसके राष्ट्र के केंद्र में आने से अन्य भारतीय भाषाओं पर कोई संकट आने वाला हो। जबकि स्थिति बिल्कुल भिन्न है। एक ही स्रोतभाषा संस्कृत से उद्भूत अधिकतर भारतीय भाषाओं एवं हिन्दी के मिलन से कोई हानि नहीं हो सकती, हाँ वे अपने-अपने विकास की गति को तीव्र कर, अपने बहुआयामी स्वरूप में अवश्य प्रतिष्ठित हो सकती है। डॉ. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी क अनुसार ''दूसरी प्रादेशिक भाषाओं से हिन्दी की कोई प्रतियोगिता प्रतिस्पर्धा नहीं है, कोई विरोध वैमनस्य नहीं है। हिन्दी हमारे देश की प्रतिनिधि भाषा है, सम्पर्क भाषा है : हिन्दी है पहचान हमारी, हिन्दी हम सबकी परिभाषा। हमारा राष्ट्र एक है, नागरिकता एक है, तो भाषा की प्रतिनिधि भाषा के रूप में एक ही होनी चाहिए। हिन्दी भारत की वही सम्पर्क भाषा, प्रतिनिधि भाषा है।''[2]

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के विकास का भारतीय भाषाओं को सक्रिय एवं प्रयोजनपरक सहयोग मिला। हिन्दी वर्चस्ववादी भाषा नहीं है; आपसी सद्भाव बढ़ाने वाली भाषा है और इसी तरह विकसित होकर पूरे देश में प्रतिष्ठित हुई है। विद्वान के अनुसार ''हिन्दी को कभी पाली, अरबी, फारसी या अंग्रेजी की तरह राज्याश्रय नहीं मिला। तमगा बनने की उसकी इच्छा रही ही नहीं, अलबत्ता वह देश की बासुंरी, तलवार और ढाल जरूर बनी है। जब भी देश को एकसूत्र में

[2] साहित्य अमृत (विश्व हिन्दी सम्मेलन विशेषांक), जुलाई 2007, प. 6 (सम्पादकीय) - डॉ. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी।

पिरोने की जरूरत पड़ी, जब भी उसके विद्रोह को वाणी देने की आवश्यकता हुई, हिन्दी ने पहल की है।''[3] राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा का विकास क्षेत्रीय प्रभावों को निर्भीकता से ग्रहण करता गया। विकास के इन क्षेत्रीय प्रभावों से हिन्दी भाषा को सबल राष्ट्रीय भूमिका - निर्वाह करने का अवसर मिला। आज भी कोई राष्ट्रव्यापी आंदोलन सिर्फ हिन्दी में ही संभव है, क्योंकि हिन्दी में जब भी चाहें, सभी भारतीय बोल सकते हैं। सन् 1807 में टॉमस रोचक ने गिलक्रिस्ट को लिखा था कि ''मैं कन्याकुमारी से कश्मीर तक या बंग से सिंध के मुहाने तक इस विश्वास से यात्रा की हिम्मत कर सकता हूँ कि मुझे हर जगह ऐसे लोग मिल जायेंगे तो हिंदुस्तानी बोल लेते होंगे।''[4] डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंधवी ने हिन्दी की वर्तमान स्थिति के संदर्भ में लिखा है - ''आज हिन्दो जो कुछ भी है, जहाँ भी है इस में राष्ट्रप्रेम की सुवास सुरभित है। वह राष्ट्र की संपर्क भाषा की गरिमा से प्रशस्त है।''[5] अत: हिन्दी की भूमिका समन्वय की है न कि अधिकार की। हिन्दी का अधिकार राष्ट्र की अन्य भाषाओं की निजता में हस्तक्षेप करना नहीं, अपितु उसका दायित्व अन्य भाषा-भाषियों के बीच संवाद की भाषा बनने का है। शैलेश मटियानी के शब्दों में इसे और भी स्पष्ट समझा जा सकता है ''हिन्दी को केन्द्रीय कामकाज की भाषा के तौर पर भी गुजराती और गुजराती, मराठी और मराठी, बंगाली और बंगाली, असमिया और असमिया, तमिल और तमिल, उड़िया और उड़िया, मलयाली और मलयाली, कन्नड़ और कन्नड़ या कश्मीरी और कश्मीरी नहीं बल्कि कश्मीरी और मलयाली, मराठी और बंगाली या तमिल और गुजराती आदि के बीच संवाद की भाषा बनना है। और यही उसकी राष्ट्रीय सरहद है।''[6]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी राष्ट्रीय आन्दोंलन की भाषा है यह वह भाषा है जिसने दुनिया के सर्वाधिक शक्तिशाली साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल बजाया।

शिक्षा, किसी भी राष्ट्र के विकास की बुनियादी शर्त है। दुनिया की तमाम शोध-गवेषणाएँ इस बात की घोषणा करती है कि ज्ञान का सम्प्रेषण, शिक्षण सबसे सरल-सहज रूप में मातृभाषा में ही संभव होता है। जापान, कोरिया, चीन, फ्रांस, जर्मनी ने अपनी ही भाषाओं में विकास की बुलंदियों को छुआ है। संसार के सभी विकसित खण्डों में शिक्षा का माध्यम उनकी राष्ट्रभाषाएँ हैं। बहुभाषी राष्ट्र होने के बावजूद हिंदुस्तान एक विदेशी भाषा को ही उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में बढ़ा रहा है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज में एक समय ऐसा भी आया, जब सिर्फ अंग्रेजी में शिक्षा देने की वकालत की गई। भारत में लार्ड मैकाले के प्रयासों से सन् 1835 में अंग्रेजी को औपचारिक रूप से ज्ञान-विज्ञान की भाषा के रूप में मान्यता मिली और अंग्रेजी के अथक प्रयासों के बावजूद वर्ष 1947 तक भारत में लगभग 1 प्रतिशत लोग ही

---

3 'हिन्दी : कल और काल' - डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ. 13.

4 डॉ. सभापति मिश्र, 'राष्ट्रीय अस्मिता और हिन्दी सम्मेलन', पत्रिका .....

5 डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी - ''साहित्य अमृत' जुलाई 2007, सम्पादकीय।

6 राष्ट्रभाषा का सवाल - शैलेष मटियानी, पृ. 206-07.

अंग्रेजी भाषा को जानने और समझने वाले थे परंतु आज़ादी के बाद इसके प्रचार-प्रसार में आशातीत प्रगति हुई और इन 67 वर्षों में यह प्रतिशत, बढ़कर लगभग 10-11 हो गया है। हिन्दी ही नहीं, सभी राष्ट्रीय भाषाएँ अंग्रेजी के खतरे से दो-चार हैं तथा संक्रमण के दौर से गुजर रही हैं। आज अंग्रेज़ी माध्यम से शिक्षा देने वाले पब्लिक और कॉन्वेंट स्कूलों में तो हिन्दी या किसी क्षेत्रीय भाषा का एक शब्द बोलने पर भी भारी दण्ड का प्रावधान है। किसी देश की स्मृति, संस्कृति तथा राष्ट्रीयता को भाषा ही प्रतिबिम्बित करती है एवं उनका संरक्षण-संवर्द्धन करती है। भारत की स्मृति, संस्कृति तथा राष्ट्रीयता को प्रतिबिम्बित करने और उसका संरक्षण-संवर्द्धन करने का काम अंग्रेजी या अन्य कोई विदेशी भाषा नहीं कर सकती है। दीर्घ दासता के उपरांत बड़े प्रयत्नों से हमने अपनी स्वाधीनता पाई है और अपनी राजनीतिक एकता एवं अखण्डता की शक्ति अर्जित की है। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने इस संदर्भ में लिखा है - ''स्वाधीनता निश्चिंतता और पूर्ण विराम नहीं, एक सतत् रूप है। जिस दिन इस तथ्य को कोई देश भूल जाता है वही उसके विघटन का पहला दिन होता है। ठीक इसी वक्त देश अपनी पहचान खोने लगता है और अपने अस्तित्व से इंकार करने लगता है। आज हम विघटन के उसी दौर से गुजर रहे हैं। राष्ट्रभाषा को खारिज करने के बहाने, अनजाने ही हम समस्त देश भाषा को निरस्त करते चल रहे हैं। यह किसी भयावह संकट की पूर्व सूचना है।''[7]

अत: हिन्दी के साथ-साथ सभी भारतीय भाषाओं की आजादी का प्रश्न, एक बार फिर भारतीयों के समक्ष आ खड़ा हुआ है। ब्रिटिश सरकार की भारतीय भाषाओं के प्रति उदासीनता और निष्क्रियता के बावजूद तत्कालीन राजनेताओं, संस्थाओं, प्रकाशनों और समाचार-पत्रों ने हिन्दी भाषा की महत्ता को स्वीकारा तथा इसे राष्ट्र की प्रगति का एक महत्वपूर्ण सोपान स्वीकार किया। भारत के निवासियों को यह कभी न भूलना होगा कि इसी हिन्दी जाति और समाज में हमारी हजारों सालों की ताकतें छिपी हैं तथा यही हिन्दी भाषा. आंदोलन, प्रतिरोध, स्वाभिमान एवं पुनर्निर्माण की भाषा रही है। अन्य भाषाएँ भी विभिन्न क्षेत्रों में अपना योगदान देती रही है।

वास्तव में हिन्दी और अन्य भाषाएँ एक-दूसरे की सहयोगी है, उन सभी में साहित्य और संस्कृति का प्रचार-प्रसार करने की क्षमता है। जिस दिन भारत में हिन्दी के नेतृत्व में अन्य भारतीय भाषा और तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम, असमी, बंगाली आदि के सहयोग से शैक्षिक और अनुसंधान कार्य प्रारम्भ होंगे, वहीं से भारत की शिक्षा व्यवस्था के पुनरुद्धार का दरवाजा खुलेगा।

[7] 'हिन्दी : कल, आज और कल' - डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ. 13-14.